International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 30-11-2021, Accepted: 16-12-2021, Published: 01-01-2022
Volume 8; Issue 1; 2022; Page No. 1-4

भीष्म साहनी के उपन्यासों का मूल्यपरक विवेचन

ऋचा सुकुमार
एसोशिएट प्रोफेसर, हिन्दी–विभाग, हेमवतीनन्दन बहुगुणा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लालगंज, प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
भीष्म साहनी हिन्दी साहित्य जगत के सशक्त उपन्यासकार हैं। जीवन के असीम अनुभवों को स्वयं जीते हुए लेखनी में बाँध लेना भीष्म साहनी की उल्लेख्य एवं स्वाभाविक विशिष्टता रही। उनका समग्र व्यक्तित्व सतरंगी आभा से युक्त है। उनमें मौलिक प्रेरणा, सूक्ष्म पर्यवेक्षण–शक्ति, गहन संवेदनात्मक धरातल, मानव–मन के विश्लेषण की गहरी पैठ और युगानुरूप सामाजिक समस्याओं को चित्रित करने विलक्षण प्रतिभा विद्यमान है। उन्होंने मानव–जीवन की भावी संभावनाओं को दृष्टि में रखकर नये मूल्यों की सृष्टि की। इस शोध आलेख में भीष्म साहनी जी के उपन्यासों में उनके मूल्यपरक दृष्टिकोण को उद्घाटित करने का छोटा सा प्रयास किया गया है।

मूलशब्द: मानवीय मूल्य, सामाजिक मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य, राजनीतिक मूल्य, मानवीय संवेदना

प्रस्तावना

भीष्म साहनी हिन्दी–कथा साहित्य की प्रगतिशील परम्परा के सशक्त हस्ताक्षर रहे हैं। पचास वर्षों से अधिक समयावधि की सतत साहित्य–साधना के द्वारा भीष्म जी ने हिन्दी–साहित्य–जगत में अपना विशिष्ट स्थान बनाया। प्रेमचन्द्र की की परम्परा के एक समर्थ यथार्थवादी उपन्यासकार के रूप में भीष्म साहनी ने न केवल प्रेमचन्द की परम्परा को विरासत के रूप में आत्मसात ही किया, अपितु जीवन और साहित्य सम्बन्धी मूल्य दृष्टि को नये युगीन सन्दर्भों के मध्य उसे पूर्ण भास्वरता के साथ समृद्ध कर सम्पन्नता की नयी भूमियों तक पहुँचाया। वे मानवीय संवेदना और जीवन की आस्था के रचनाकार है। उन्होंने तमाम तरह की विषमताओं, विद्रूपताओं, अतिचारों, दुर्मानसिकताओं को देखा–समझा–महसूस किया और मूल्य चेतना के स्तर पर उनके परिहार का प्रयत्न किया। उनकी समस्त शब्द–संस्तृति मानवीय मूल्य–चिन्ता से ही आकीर्ण है। डॉ0 नामवर सिंह ने भीष्म साहनी के सम्बन्ध में लिखा है– ''भीष्म साहनी वर्तमान हिन्दी जगत के उन थोड़े से लेखकों में से हैं जो सच्चे अर्थों में धर्म–निरपेक्ष और प्रतिबद्ध है। खास बात यह है कि वे अपनी रचनाओं में इस आस्था का ढोल नहीं पीटते। यह विशेषता उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है कि इसे उन्हें दिखाने की जरूरत नहीं पड़ती। उनके सौम्य, शालीन, सहज और विनम्र व्यक्तित्व के साथ विचारों की दृढ़ प्रतिबद्धता इतना घुल मिल गयी है कि कभी–कभी उनके बारे में भ्रम भी होता है। बिना आक्रामक हुए भी कोई लेखक प्रतिबद्ध हो सकता है, इसकी सर्वोत्तम मिसाल भीष्म साहनी है।''[1]

भीष्म साहनी का मूल्य–चिन्तन प्रेमचंद और यशपाल के मूल्य–चिन्तन से अपना निकट सम्बन्ध रखता है। प्रताप ठाकुर भीष्म साहनी को प्रेमचन्द और यशपाल का पोषक मानते हुए कहते है– ''भीष्म साहनी हिन्दी का प्रगतिशील परम्परा के शक्तिशाली हस्ताक्षर है। उनके कथामानस पर प्रेमचन्द्र और यशपाल की गहरी छाप है। परिवेश की समग्रता में वस्तु और पात्र के अन्तस्सम्बन्धों को किस प्रकार खोला जाए और इन सम्बन्धों में जनता के मुक्तिकामी संघर्षों को कैसे प्रतिपादित किया जाए, यह शिल्प भीष्म जी को प्रेमचंद के निकट पहुँचा देता है। यद्यपि भीष्म साहनी ने प्रेमचन्द की ग्रामीण वस्तु को ही नहीं पकड़ा, फिर भी उनका मुहावरा प्रेमचन्द से मिलता जुलता है। वस्तु–परिपेक्ष्य और घटना–दृष्टान्तों की दृष्टि से भीष्म साहनी यशपाल के निकट दिखायी देते हैं'' [2]

भीष्म साहनी के उपन्यासों में मानवीय मूल्यों और मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति हुई है, भीष्म साहनी एक अनुभव–सम्पन्न साहित्य–सर्जक हैं। उनके अध्ययन की गहनता एवं व्यापकता का प्रभाव उनके साहित्य में परिलक्षित होता है। वे एक स्वस्थ जीवन–दर्शन के पोषक रहे हैं। वे संवेदनशील हृदय के साथ–साथ सजग, जागरूक और प्रबुद्ध मस्तिष्क के स्वामी थे। उनके उपन्यास जिस विशिष्ट भूमि पर आधारित है, वह उनका यथार्थवाद है। 'झरोखे' से लेकर 'नीलू नीलिमा नीलोफर' तक सभी उपन्यासों मे कही भी उनकी दृष्टि यथार्थवाद से विमुख नहीं हुई। युग–जीवन की विविध स्थितियाँ, गतिविधियाँ और घटनाएँ उनके उपन्यासों का विषय रही है। युगीन जीवन चित्रण उन्होंने अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ किया। एक मानवतावादी रचनाकार के रूप में जन विरोधी भूमिकाओं के प्रति तीखी प्रतिक्रिया उनके उपन्यासों में परिलक्षित होती है। युग जीवन का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं बचा है जहाँ भीष्म साहनी की तीक्ष्ण और सूक्ष्म दृष्टि न गयी हो। इस सन्दर्भ में डॉ0 जगदीश गुप्त ने लिखा है– ''किसी मूल्य बोध का संश्लेषण तब तक सृजन–प्रक्रिया में संभव नहीं है, जब तक वह अनुभूति की स्पन्दित भाव–भूमि पर आधारित नहीं होता। जिन मानवीय अनुभवों के आधार पर वह मूल्य सामान्य जीवन में सिद्ध माना गया, उन या उनके समान्तर वैसी ही अनुभूति की सजीव सृष्टि का सूत्रपात हुए बिना रचना–प्रक्रिया में मूल्य–बोध का समावेश असम्भव है। '' [3]

साहनी जी ने भी अपने उपन्यासों में युग जीवन के यथार्थ को जैसा अनुभव किया वैसा ही परत–दर–परत अनावृत कर धनीभूत संवेदना के साथ व्यंजित किया है। उनके उपन्यासों में आज के समाज तथा मानव जीवन से सम्बन्ध रखने वाले मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है। इसका कारण यह है कि भीष्म साहनी ने स्वतन्त्रता पूर्व के भारत को जिया और उस समाज के सभी परिवर्तनों और मूल्यों को सूक्ष्मता के साथ अनुभव किया।

भीष्म साहनी ने अपनी उपन्यास–यात्रा 'झरोखे', 'कडियाँ', 'तमस', 'बसंती', 'मय्यादास की माड़ी', 'कुंतो', और 'नीलू नीलिमा नीलोफर' सात उपन्यासों का सृजन किया है। इनमें 'झरोखे', 'कड़ियाँ' और 'कुंतो' अन्य उपन्यासों की अपेक्षा सामान्य कोटि के उपन्यास हैं। 'तमस', 'बसंती', 'मय्यादास की माड़ी' और 'नीलू नीलिमा नीलोफर' को उनके महत्त्वपूर्ण उपन्यास कहा जा सकता

है। भीष्म साहनी ने 'तमस' में साम्प्रदायिकता–विषयक मूल्यबोध की अभिव्यक्ति की है। रचना–वस्तु–विस्तार की दृष्टि से 'तमस' उनकी एक महत्त्वाकांक्षी कृति है। साहनी जी उस अमानवीय त्रासदी और हृदय को दहला देने वाले अनुभवों के स्वयं भोक्ता औद द्रष्टा दोनों ही थे। इसीलिए उस उपन्यास में भोक्ता होने की धनीभूत पीड़ा विद्यमान है। इस संदर्भ में गोपाल राय की मान्यता है कि ''उपन्यासकार के रूप में भीष्म साहनी को प्रथम–पंक्ति में स्थापित करने वाला उपन्यास 'तमस' है जिसमें स्वाधीनता–प्राप्ति के पूर्व पंजाब में पैदा हुए साम्प्रदायिक तनाव और उससे जुड़ी क्रूरताओं का अंकन है।'' [4] 'तमस' साम्प्रदायिकता अमानवीयता के विरूद्ध मानव–विवेक और मानव–मूल्यों की परीक्षा का उपन्यास है। यही कारण है कि हत्या करने वाला नत्थू भी आत्म–ग्लानि और आत्मपीड़ा से ग्रस्त है। इस मनुष्यगत संवेदन और मानवतावाद को भीष्म साहनी ने 'तमस' में उस सीमा तक जीवित रखा है जिस सीमा में कोई पशुवधिक भी अपनी मानवता को विस्मृत नहीं कर पाता।

सामाजिक मूल्यों के परिपेक्ष्य में भीष्म साहनी के उपन्यासों में विवाह–विषयक परिवर्तित मूल्य–दृष्टि, प्रेम और विवाह, प्रेम और काम, नारी–विषयक मूल्य दृष्टि और साम्प्रदायिकता सम्बन्धी मूल्य बोध की अभिव्यक्ति की गयी है। भीष्म साहनी के उपन्यासों में प्रेम और विवाह विषयक मूल्य–दृष्टि से यह ज्ञात होता है भीष्म जी विवाह–विषयक मूल्यों में आस्था व्यक्त करते हैं। वे समाज के लिए विवाह–संस्था की अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में विवाह स्त्री–पुरूष का समाज–स्वीकृत सम्बन्ध है। वे प्रेम–विवाह और अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन करते है। 'नीलू नीलिमा नीमोफर' में अन्तर्जातीय प्रेम–विवाह की दुःखद प्ररिणति दिखायी गयी है। परन्तु इस अन्तर्जातीय प्रेम–विवाह के त्रासदी के मूल में साम्प्रदायिकता निहित है। भीष्म साहनी ने इस उपन्यास में दिखाया है कि नयी पीढ़ी में धार्मिक कट्टरता और फिरकापस्ती पुरानी पीढ़ी में धार्मिक कट्टरता और फिरकापस्ती पुरानी पीढ़ी से ज्यादा हिंसक और बर्बर है। भीष्म साहनी ने इस उपन्यास में दो प्रेम–त्रासदियों के माध्यम से साम्प्रदायिकता के धिनौने चेहरे को बेनकाब किया है। नीलोफर और सुधीर के एक निष्ठ प्रेम और अन्तर्जातीय विवाह को खण्डित करने की कोशिश की जाती है। नीलोफर को नाना प्रकार की अमानवीय यंत्रणएँ अपने पिता के घर सहन करनी पड़ती है। इस उपन्यास के दूसरे प्रेमी जोड़े की नायिका नीलिमा अल्ताफ़ से प्रेम करती है। नीलिमा के डैडी जेहनियत के स्तर पर प्रगति शील प्रतीत होते है और अपनी परम्परावादी माँ को समझाते है कि जमाना बदल रहा है। लड़कियों को घर की चार–दीवारी में बाँध कर नहीं रखा जा सकता। वह बदलते मूल्यों को समझते है परन्तु परम्परावादी माँ की परम्परागत मूल्य दृष्टि को बदलने में असमर्थ रहते है। अल्ताफ़ से मिलते–जुलते रहने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं होती। माँ जब इस तरह के सम्बन्धों पर नजर रखने के लिए कहती है, तो वे कहते हैं–''नीलिमा के रहन–सहन पर मै पाबंदियाँ नहीं लगा सकता। जिन्दगी–भर के अपने विश्वासों –अकीदों को छोड़ नहीं सकता। नीलिमा को पूरी आजादी है, वह अपने मित्र खुद चुने, उसे केवल सावधान करते रहना मेरा कर्त्तव्य है, पर मैं उस पर हुक्म नहीं चलाऊगा।'' [5]

नीलिमा अल्ताफ़ को चाहते हुए भी अपनी दादी और डैडी की प्रसन्नता के लिए अचानक सुबोध से विवाह करने का निर्णय लेती है। उसे लगता है सुबोध से विवाह करके सुखमय जीवन व्यतीत करेगी किन्तु वह अनमेल विवाह का शिकार होती है। 'नीलू नीलिमा नीलोफर' में सुबोध–नीलिमा के वैवाहिक सम्बन्ध के माध्यम से अनमेल–विवाह के दुष्परिणामों को सामने लाया गया है। निरन्तर यातना सहन करने वाली नीलिमा के मन में यातना की पराकाष्ठा में स्वाभिमान जागता है और पति के अत्याचारों के विरोध में खड़ी होती है। भीष्म जी मानते हैं कि नारी की वर्तमानपरिवेश में आर्थिक रूप से एक दूसरे पर निर्भरता ही सबसे बड़ी कमजोरी है। प्रमिला जब इस दृष्टि से आत्मनिर्भर हो जाती है तो जीवन की टूटी कड़ियों को जोड़ने में सफल हो जाती है। 'बसंती' में बसंती, 'मय्यादास की माड़ी' में रूकमणी और 'कुंतो' में जयदेव की मौसेरी बहन सुषमा आत्मनिर्भर होकर आत्म–सम्मान से जीवन यापन करती है। भीष्म साहनी विवाह संस्था में तो आस्था व्यक्त करते हैं, परन्तु विवाह–सम्बन्धी संस्कारों, जड़ परम्पराओं और अन्धविश्वासों की खिल्ली उड़ाते हैं। 'बसंती' में बुलाकीराम दूल्हा बनकर बसंती को ढूँढ़ता रहता है। 'मय्यादास की माड़ी' में मँझले और कल्ले के विवाह के अवसर पर किये जाने वाले संस्कारों की रिक्तता को वे अनावृत करते हैं। 'कुंतो' में सुषमा जब यह अनुभव करती है कि गिरीश से उसका–सम्बन्ध–निर्वाह नहीं हो सकता तो वह उस ऋण की भाँति निभाये जाने वाले दाम्पत्य–सम्बन्ध का विच्छेद करके आत्म–विश्वास के साथ नयी जिन्दगी की शुरूआत करती है।

विवाह–सम्बन्धी मूल्यों का पुनरीक्षण करते हुए भीष्म साहनी की सूक्ष्म एवं तीक्ष्ण दृष्टि इस तथ्य को ओझल नहीं करती कि व्यवस्था की दरारो के मध्य में नारी अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु धूर्त आचरण करने को जरा भी अनुचित नहीं मानती। 'कड़ियाँ' उपन्यास में प्रमिला की चाची भी से ऐसी ही सलाह देती है वह प्रमिला से कहती है– 'मर्द औरत के मांस का भूखा होता है। कुत्ते के मुँह में हड्डी दिए रहो तो वह भौंकता नहीं, काटता नहीं, हड्डी हटा लो तो भौकने लगता है।'' [6]

भीष्म साहनी ने 'कड़ियाँ' 'कुंतो' 'बसंती' और 'नीलू नीलिमा नीलोफर' में प्रेम और काम सम्बन्धी मूल्यों की अभिव्यक्ति की है। 'कुंतो' उपन्यास में प्रेम और काम सम्बन्धी मूल्यों के विकास एवं तज्जन्य विकृतियों को भी यथार्थ रूप में उद्घाटित किया गया है। उपन्यास का नायक जयदेव अपनी मौसेरी बहन सुषमा से प्रेम करता है और बातों ही बातों में अपने मन की बात कह देता है– 'मेरी मौसी की बेटी मुझे अच्छी लगती है और तो मैं किसी को नहीं जानता। बचपन में हम लोग साथ खेला करते थे। तभी से वह मुझे अच्छी लगती है।'' [7]

भीष्म साहनी के उपन्यासों में प्रेम और काम सम्बन्धी मूल्यों का विकास एवं तज्जन्य विकृतियाँ यथार्थ रूप में उद्घाटित हुई है। 'बसन्ती' उपन्यास में 'दीनू बाहर बैठे–बैठे हुक्म चलाता जो उसकी आदत थी और रात को कभी रूक्मी तो कभी बसन्ती का शरीर चिंचोड़ता रहता था, लगता था उसने यही एक धन्धा अपना रखा है।'' [8] भीष्म साहनी की इस नायिका ''बसन्ती में जहाँ स्वतन्त्र जीवन जीने की लालसा भीतर तक है वहीं भरा–पूरा जीवन जीने के दुर्निवार आकांक्षा भी। उसे मैले–कुचैले दिशाहीन जिन्दगी को जीते देख बड़ी कोफ्त होती थी। बसन्ती में जीवन है और जीवन की अभिव्यक्ति के जो रास्ते उसने देखे है उसमें जो प्रबल था वह पहली राह खुलते ही अधीरता वश चल पड़ी। ठहरकर विचार करने के स्थितियाँ भी नहीं थीं क्योंकि अगर ठहर जाती तो खुद को बूढ़े बुलाकी के घर पाती।'' [9]

भीष्म साहनी प्रेम और काम को जीवन के अनिवार्य मूल्य के रूप में मानते हैं। उन्होंने 'झरोखे' उपन्यास में यह स्पष्ट किया है कि काम–वृत्तियों का दमन व्यक्तित्व के विकास में बाधक होता है। काम वृत्तियों का उन्नयन और उदात्तीकृत रूप व्यक्ति और समाज के समुचित विकास में सहायक होता है।

सांस्कृतिक मूल्यों के परिपेक्ष्य में भीष्म साहनी का धार्मिक मूल्य–बोध ईश्वर–विषयक मूल्य–दृष्टि, जीवन के प्रति आस्था, जिजीविषा, नियतिवाद और धार्मिक पाखण्ड और अन्धविश्वासों का प्रतिकार आदि के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। भीष्म साहनी अपने उपन्यासों में नियतिवाद का खण्डन करते हैं। वे जनसामान्य का प्रतिनिधित्व करने वालों सकारात्मक चरित्रों की सृष्टि करते हैं। वे सामन्तवादी और पूँजीवादी समाज के प्रतिभागी मूल्यों को नकार कर या विरोध कर नये मूल्यों की सृष्टि करते

हैं। वे मानव–धर्म को महत्त्व प्रदान करते हैं। जो धर्म मानव–मानव में वैमनस्य उत्पन्न करे, उसे वे धर्म की संज्ञा नहीं देते। वे अपने उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्यों के हास पर चिन्ता व्यक्त करते है। उन्होंने हिन्दू मुस्लिम और सिक्ख समाज के सन्दर्भ में धर्म के विकृत चेहरे को प्रस्तुत किया है। 'तमस' उपन्यास में उस समय के आम मुस्लिमों और सिक्खों की मानसिकता को स्पष्ट करते हुए भीष्म साहनी लिखते है– ''तुर्कों के जेहन में भी यही था कि वे अपने पुराने दुश्मन सिक्खों पर हमला बोल रहे हैं और सिक्खों के जेहन में भी वे दो सौ साल पहले के तुर्क थे, जिनके साथ खालसा लोहा लिया करता था। यह लड़ाई ऐतिहासिक लड़ाइयों की श्रृंखला में एक कड़ी थी। लड़ने वालों के पाँव बीसवीं सदी में थे, सिर मध्य युग में।'' [10] वे जादू–टोना, धार्मिक पाखण्ड, कर्मकाण्ड और पुरोहितवाद का खण्डन करते हैं। 'मय्यादास की माड़ी' में भीष्म साहनी ने पुरोहितवाद, कर्मकाण्ड और धार्मिक अन्धविश्वासों की विकृतियॉ रामदास पुरोहित के चरित्र के माध्यम से प्रकट की है। धर्म और कर्मकाण्ड का कार्य करने वाले रामदास पुरोहित का चरित्र किसी भी स्तर पर मंगलकारी और परहितकारी नहीं है। उसकी पीठ पीछे सभी उसे बुरा–भला कहते हैं– ''मुआ ब्राम्हण अब पाठ करता फिरता है, विधवा गोमा की हॉडी निकालकर सब कुछ हजम कर गया है।'' [11]

इस प्रकार भीष्म साहनी धार्मिक अन्धविश्वासी भारतीय समाज की अन्ध–श्रद्धा और धर्म के नाम पर पंड़े–पुरोहितों द्वारा किये जाने वाले निकृष्ट कृत्यों को सामने लाकर नये मूल्यों की तलाश करते हैं। 'झरोखे' उपन्यास में धार्मिक आडम्बरों, मिथ्या आदर्शों झूठे सिद्धान्तों और रूढ़िवादी जड़ परम्पराओं और प्रतिगामी मूल्यों के विरूद्ध गैर–साम्प्रदायिक सामाजिक मूल्य–दृष्टि की तलाश की है। उपन्यास में परिवार के बालकों को केन्द्र में रखकर संस्कार–निर्माण की यथार्थ दशाओं का उद्‌घाटन हुआ है। इस उपन्यास के माध्यम से साहनी जी ने यह स्थापित किया है कि कभी–कभी माँ–बाप और बालकों को पढ़ाने वाला पंडित धर्म, योग, ब्रह्मचर्य की शिक्षा प्रदान करने के बहाने उनकी सहजात नैसर्गिक मूल प्रवृत्तियों के समुचित दिशा में विकसित होने में व्याघात पहुँचाते हैं। धर्मग्रन्थों के दृष्टांन्तों के द्वारा उन्हें धर्म–भीरू बनाया जाता है जिससे बालक विकृत मानसिकता के शिकार होते है। उनके मन में नारी के प्रति और जैवकीय परिवर्तन के प्रति घृणा और भय उत्पन्न किया जाता है। यह जीवन–निषेध का परम्परागत मूल्यबोध है जिसे भीष्म जी 'झरोखे' में अस्वीकार करते हुए अपनी नयी मूल्य–दृष्टि को प्रकाशित करते है।

राजनीतिक मूल्यों के अन्तर्गत भीष्म साहनी ने 'तमस' और 'मय्यादास की माड़ी' उपन्यास में उपनिवेशवादी मूल्यों के प्रतिकार के साथ राष्ट्रवादी मूल्यों की दुर्बलताओं का चित्रण किया है। यदि 'तमस' उपन्यास को उत्तर–औपनिवेशिक भारत के वर्तमान काल के सन्दर्भ में देखा जाए तो उसमें विभाजन की भयंकर मानवीय त्रासदी ही नहीं इस देश के उत्तर–औपनिवेशक काल की अनेक गम्भीर समस्याओं से भी साक्षात्कार किया जा सकता है। रिचर्ड और लीजा के जिस वार्तालाप के माध्यम से उपनिवेशवादी व्यवस्था का एक चालक और क्रूर चरित्र उभरता है। जनता के प्रति औपनिवेशक शासकों का दृष्टिकोण रिचर्ड के लीजा को कहे इन शब्दों से प्रकट होता है– ''सुनों, सभी हिन्दुस्तानी चिड़चिड़े मिज़ाज के होते हैं। छोटे–से उकसावे पर भड़क उठने वाले, धर्म के नाम पर खून करने वाले, सभी व्यक्तिवादी होते हैं, और.....और सभी सफेद चमड़ी वाली औरतों को पसन्द करते हैं.....धर्म के नाम पर आपस में लड़ते हैं, देश के नाम पर हमारे साथ लड़ते हैं।'' 12 इसे यदि हम आज के सन्दर्भ में उनके स्थान पर पूँजीवादी व्यवस्था से जुड़े राजनीतिज्ञों या शासकों को रखें तो हमें ज्ञात होगा कि उपनिवेशवादी और भारतीय पूँजीवादी का चरित्र इस सन्दर्भ में समरूप है। यह उपन्यास पूर्णतः समकालीनता में अवस्थित है। 'मय्यादास की माड़ी' मानवीय मूल्यों के विकास की गाथा है। मानवीय मूल्यों के परिवर्तन से मानवीय व्यवहार में जो परिवर्तन आता है, उसका चित्रण इसमें परिलक्षित होता है। भीष्म साहनी ने गहरी सूझ–बूझ और अत्यन्त कौशल से पंजाब के जीवन्त परिवेश में जीवन का एक–एक स्पन्दन, निरीहता, बेबसी, गतिशीलता और स्थिरता ऐतिहासिक तथ्यों, लोकगीतों, किस्से–कहानियों के सन्दर्भ में प्रस्तुत की है तथा इनके माध्यम से मूल्यगत परिवर्तन दिखायें हैं। भीष्म साहनी ने सामन्तवादी और पूँजीवादी मूल्यों का विरोध दर्शाते हुए 'बसन्ती' उपन्यास में मध्यवर्गीय और निम्नमध्यवर्गीय समाज का यथार्थ चित्रण किया है। मध्यवर्गीय समाज की मिथ्या प्रदर्शनवृत्ति, पाखण्ड और निष्क्रियता निर्ममता के साथ अनावृत की गयी है। साथ ही निम्न मध्य–वर्गीय समाज की परिश्रमशीलता और मटमैली जिन्दगी और सहज स्वभाविक सादगी को एक साथ उभारा गया है। पुरानी और नयी पीढ़ी में आये मूल्यगत अन्तर को भीष्म साहनी ने हरियाणा के अहीर चौधरी और उसकी चौदह वर्षीय बेटी के क्रियाकलापों के माध्यम से व्यक्त किया है। अहीर चौधरी मात्र बारह सौ रूपये के लिए अपने बेटी का विवाह साठ वर्षीय लगड़े दर्जी बुलाकीराम से करना चाहता है। परन्तु बसन्ती बस्ती की नयी पीढ़ी की प्रतिनिधि है। वह वैयक्तिक और सामाजिक स्तर पर व्यवस्था की विसंगतियों के विरूद्ध खड़ी होती है। वह नये मूल्यों की स्थापना के लिए संघर्ष करती है। वह अपने पिता की इच्छा के विपरीत साठ–वर्षीय बूढ़े बुलाकीराम की अपेक्षा अपने पूर्व परिचित दीनू के साथ भागती है। वह पुरातन जड़–मूल्यों के विरूद्ध विद्रोह करती है, पूँजीवादी व्यवस्था के दुहरे मूल्यों से टकराती है। डॉ0 खगेन्द्र ठाकुर ने इस सन्दर्भ में लिखा है– ''बसंती का चरित्र हिन्दी कथा साहित्य में सर्वथा नया है। क्योंकि वह नये यथार्थ की उपज है। भीष्म साहनी की खूबी है कि उन्होंने ही नये यथार्थ की उपज को पहचाना है और अपनी गम्भीर कला से रँगकर उसे प्रस्तुत किया है। बसंती का चरित्र हिन्दी कथा साहित्य को उनकी महत्तवपूर्ण देन है।'' [13]

भीष्म साहनी के उपन्यासों में मूल्यों का परम्परागत स्वरूप नहीं मिलता और वे आदर्श मूल्यों को अनावश्यक आरोपित करने के भी पक्षधर नहीं है। वे मानवीय संवेदना और मानवीय मूल्यों के अन्वेषक के रूप में हमारे सम्मुख आते है। उनका स्पष्ट मानना है कि ''वही साहित्य कालजयी और श्रेष्ठ होता है जो साहित्य जिन्दगी की कोख में से निकलकर आये। तभी वह विश्वसनीय हो पाता है। ऊपर से निष्कर्ष थोपने से न तो साहित्य–सृजन होता है और न ही किसी विचारधारा का प्रचार–प्रसार होता है।'' [14]

भीष्म साहनी साहित्य–सर्जक थे। उन्होने बहुमूल्य कृतियों का सृजन कर आधुनिक हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने कविता नहीं लिखी, किन्तु उनकी गद्य–संस्तृति इतनी सशक्त और विविध–रूपिणी है कि भारतीय साहित्योतिहास में भीष्म साहनी का नाम सुचिर–स्मरणीय होगा। डॉ0 विजयमोहन सिंह के अनुसार भीष्म साहनी को निर्विवाद रूप से हिन्दी में प्रगतिशील लेखन परम्परा का 'भीष्म पितामह' कहा जा सकता है। उनके अवदान से हिन्दी साहित्य को अनूठी ऋद्धि मिली है।

संदर्भ सूची

1. सारिका, वर्ष 1990, पृ0 44–उद्‌घृत : डॉ0 विवेक द्विवेदी, भीष्म साहनीः उपन्यास साहित्य, (नयी दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 1998) पृ0–34
2. राजेश्वर सक्सेना : प्रताप ठाकुर, भीष्म साहनीः व्यक्ति और रचना (दिल्ली वाणी प्रकाशन, 1997), 'शुरूआत', पृ0–2

3. डॉ0 जगदीश गुप्त, नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ, (दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1971), पृ0 16–17
4. डॉ0 गोपाल राय, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, (नई–दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2002) पृ0–303
5. भीष्म साहनी, 'नीलू नीलिमा, नीलोफर, (नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन : 2001) पृ0–78
6. भीष्म साहनी, 'कडियॉ, (नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2002), पृ0–71
7. भीष्म साहनी, कुंतो (नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन 1997) पृ0–19
8. भीष्म साहनी, 'बसन्ती' (नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन 2012) पृ0–151
9. नया पथः भीष्म साहनी विशेषांक – अप्रैल–सितम्बर संयुक्तांक 2015, पृ0–145 (उडान की तैयारी, लेख से)
10. भीष्म साहनी, 'तमस' (राजकमल प्रकाशन 1984) पृ0–211
11. भीष्म साहनी, 'मय्यादास की माड़ी' राजकमल प्रकाशन 2000 पृ0सं0–15
12. भीष्म साहनी 'तमस' (राजकमल प्रकाशन, 1984) पृ0–44–45
13. डॉ0 खगेन्द्र ठाकुर, 'जिजीविषा और व्यवस्था का टकराव', आलोचना, जनवरी – मार्च, अप्रैल, जून, 1983) पृ0–65
14. भीष्म साहनी, आज के अतीत, (नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन 2003) पृ0–267